सामाजिक एकता के उपाय

-प्रो. वीरसागर जैन

आज मुझे बहुत अधिक प्रसन्नता हो रही है कि आज हम सभी आचार्य विशुद्धसागरजी महाराज के ससंघ सान्निध्य में इस विषय पर गम्भीरता से विचार-विमर्श करने के लिए एकत्रित हुए हैं कि हमारी समाज में एकता और सौहार्द का वातावरण कैसे बने | यदि हम इसीप्रकार इस विषय पर बारम्बार विचार-विमर्श करते रहे तो निश्चित ही समाज में एकता और सौहार्द का वातावरण बनेगा |

अत: इस विषय में सर्वप्रथम उपाय तो यही है कि हम सब बारम्बार इस तरह के आयोजन करके एकता के महत्त्व को स्वयं भी भलीभांति समझें और फिर अपनी पूरी समाज को भी, समाज के प्रत्येक सदस्य को भी सामाजिक एकता का महत्त्व भलीभांति समझाएँ |

ध्यान रहे दूसरों को समझाने से पहले स्वयं को भलीभांति समझना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि मुझे ऐसा लगता है कि हम, जो कि समाज के बड़े-बड़े प्रतिनिधि अथवा विद्वान् या नेता आदि कहलाते हैं, वे ही सामाजिक एकता के महत्त्व को भलीभांति नहीं समझ रहे हैं और इसीलिए सब गड़बड़ हो रहा है | अक्सर हम समाज के कर्णधार ही समाज की एकता में बाधक बनते हैं | अथवा कहें कि हम ही जाने-अनजाने में समाज में फूट के बीज बो देते हैं | अत: सर्वप्रथम हमको स्वयं सावधानीपूर्वक एकता का स्वरूप एवं महत्त्व भलीभांति समझना होगा | इसके बिना समाज में एकता का वातावरण बनना सर्वथा असम्भव है |

इसके बाद हमें अपनी समाज के प्रत्येक सदस्य को भी सामाजिक एकता का महत्त्व भलीभांति समझाना होगा | बताना होगा कि पारस्परिक द्वेष या विभाजन से हमारा कितना नुकसान हो चुका है, हो रहा है और यदि अभी भी नहीं संभले तो और भी बहुत अधिक नुकसान हो जाएगा | हमारी जनसंख्या भी वास्तव में इसी कारण से बहुत कम हो गई है और अभी भी दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है | यदि यही हाल रहा तो एक दिन हम केवल इतिहास की पुस्तकों में लुप्त प्रजाति की तरह पढ़े जाएँगे | बहुत दुःख होता है यह जानकर कि अभी अकबर के समय तक भी हमारी जनसंख्या 4 करोड़ पाई जाती थी, जबकि देश की कुल जनसंख्या 40 करोड़ भी नहीं थी और आज हम एक प्रतिशत भी नहीं बचे हैं |

ध्यान रहे, सामाजिक एकता रखने का अर्थ यह नहीं है कि हम सबकी गलत-सलत मान्यताओं का समर्थन करें | नहीं, कदापि नहीं, परन्तु हमें केवल सामाजिक स्तर पर जैन होने के नाते एक दिखना है | तथा वह कोई कपट नहीं है, साधर्मी वात्सल्य ही है | मतभेद होते हुए भी मनभेद न रखने की कला आसानी से सीखी जा सकती है | हम अपने परिवार में भी ऐसा करते हैं | सबके विचार एक से नहीं होते हैं, फिर भी हम सब मिलकर प्रेम से संगठित रहते हैं | यही कार्य हमें सामाजिक स्तर पर भी करना है | अपने समाज की रक्षा, सुरक्षा और संवर्धन के लिए यह काम करना अत्यंत आवश्यक है | वरना हमारी बहुत हानि होगी, हमारा अस्तित्व भी बचना मुश्किल हो जाएगा | हमारी समाज के प्रत्येक सदस्य को इस बात को बहुत गम्भीरता से समझना है |

तथा इसके लिए भी हमें कुछ बहुत अधिक नहीं करना है | मात्र इतना करना है कि अपने साधर्मी भाई के प्रति द्वेष नहीं व्यक्त करना है, उसकी निन्दा नहीं करना है,बस | कम से कम सार्वजनिक रूप से तो कभी भी किसी को किसी की निन्दा नहीं करना है | यदि हम सब इतना भी कर सके तो समाज का परम हित होगा | परन्तु दुःख

और आश्चर्य का विषय तो यही है कि हम इतना भी नहीं कर पा रहे हैं और लगातार अपने ही साधर्मी भाई की बुराई करते जा रहे हैं, खुले आम माइक पर कर रहे हैं | हम दूसरों से नहीं लड़ेंगे, पर अपने भाई की जरा सी बात सहन नहीं करेंगे | वैसे तो हम अहिंसा, अनेकान्त, स्याद्वाद जैसे बड़े-बड़े सिद्धान्तों को मानेंगे, क्षमावाणी जैसा पर्व मनाएँगे, हर मन्दिर में शेर-गाय को एक घाट पर पानी पीते दिखाएँगे, पर अपने ही भाई के साथ जरा-सा भी मतभेद आए तो उसकी निन्दा और बहिष्कार तक पर उतर आएँगे, जीवन भर के लिए द्वेष भाव पाल लेंगे | जैन आचार्यों ने ऐसे लोगों को कुत्ते से भी गया-बीता कहा है | यथा-

ग्रामन्तरोपगतयोरेकामिषसंगजातमत्सरयोः।
स्यात् सौख्यमपि शुनोः भ्रात्रोरपि वादिनोर्न स्यात् ।।

-आचार्य सिद्धसेन, द्वात्रिंशतिका, 8/1

अर्थ- अहो ! गली में बैठे हुए दो कुत्तों में तो रोटी के टुकड़े पर थोड़ी देर के लिए ही वैर-भाव देखा जाता है, परन्तु दो वादियों में, जो कि एक ही मार्ग के होते हैं, प्रेम नहीं दिखाई देता | वे कुत्ते से भी हीन हैं |

आचार्य कुन्दकुन्द ने भी कहा है कि यदि कोई मुनि अपने सधर्मा मुनि की निन्दा करता है तो समझना चाहिए कि वह नष्टचारित्र है | यथा-

अववददि सासणत्थं समणं दिट्ठा पदोसदो जो हि ।
किरियासु णाणुमण्णदि हवदि सो णट्ठचारित्तो ।।

-आचार्य कुन्दकुन्द, प्रवचनसार, 3/65

अर्थ- जो कोई मुनि दूसरे जिनमार्गी मुनि को देखकर द्वेष भाव से उसका अनादर करता है, बुराई करता है तो समझना चाहिए कि वह नष्टचारित्र है |

इससे सिद्ध होता है कि सामाजिक एकता के लिए यदि हम सब इतना भी संकल्प कर लें कि हम परस्पर एक-दूसरे की निन्दा या बुराई नहीं करेंगे तो हमारे समाज की बहुत उन्नति हो सकती है | समस्या सिर्फ यही है कि हम इतना भी नहीं कर पा रहे हैं | एक साधु दूसरे साधु की और एक श्रावक दूसरे श्रावक की बुराई करता देखा जा रहा है और वह भी सार्वजनिक रूप से | इसी के कारण हमारी समाज में बहुत विभाजन हो रहा है |

यद्यपि चींटी से लेकर हाथी तक प्राय: सभी प्राणी संगठित रहते हैं, परन्तु इस तरह की बुराई से आम जनता भ्रमित हो जाती है और समाज में बिखराव हो जाता है | दुनिया के प्राय: सभी क्षेत्रों में (खेल, सिनेमा, व्यापार, शिक्षा) लोग एक नये आगन्तुक व्यक्ति का भी स्वागत करते हैं, उत्साहवर्धन करते हैं, सहायता करते हैं, पर धर्म के क्षेत्र में रहनेवाले हम लोगों को पता नहीं क्या हो गया है कि हम उसे वात्सल्य से अपनाते ही नहीं | इससे वह हतोत्साहित होकर अन्यत्र चला जाता है, अत: उन्हें प्रेम से अपनाना चाहिए | आचार्य विद्यानंदजी का यह सूत्र इस सम्बन्ध में अत्यन्त उपयोगी है कि- मत ठुकराओ, गले लगाओ, धर्म सिखाओ |

जो लोग एक दूसरे की निंदा करते हैं, उन्हें विचार करना चाहिए कि यह कितना बड़ा पाप है, इससे धर्म की अप्रभावना तो होती ही है, घोर कर्म का बंध भी होता है | तत्त्वार्थसूत्र आदि शास्त्रों में स्पष्ट लिखा है कि

परनिन्दा से नीच गोत्र एवं असाता वेदनीय आदि घोर अशुभ कर्मों का बन्ध होता है, अत: हमें कभी भी किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिए | अपने साधर्मी की तो कदापि नहीं, इसका तो संकल्प ही ले लेना चाहिए |

पूरे समाज में एकता और सौहार्द का वातावरण बनाने के लिए हमें शास्त्रों में यत्र-तत्र अन्य भी अनेकानेक गाथाएँ और श्लोक बड़े ही महत्त्वपूर्ण उपलब्ध होते हैं, हमें उन पर गम्भीरता से चिन्तन-मनन करना चाहिए | यथा-

उच्चावचजनप्रायः समयोऽयं जिनेशिनाम् ।
नैकस्मिन् पुरुषे तिष्ठेदेकस्तम्भ इवालयः।।

-आचार्य सोमदेवसूरि, यशस्तिलकचम्पू, 8/365

अर्थ- यह जिनशासन छोटे-बड़े अनेक प्रकार के मनुष्यों पर आधारित है । कोई यह न समझे कि यह एक ही पुरुष पर खड़ा है। क्या कोई विशाल महल एक ही स्तम्भ पर खड़ा रह सकता है ?

यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण श्लोक है, जिसका अभिप्राय है कि यह जिनशासन एक ऐसे विशाल महल के समान है, जिसे आज तक छोटे-बड़े असंख्य व्यक्तियों ने सँभाला है, किसी एक ही स्तंभ पर पूरा महल नहीं खड़ा हुआ है, अत: हमें सभी का योगदान स्वीकार करना चाहिए, कभी किसी एक की भी अवहेलना नहीं करना चाहिए | यही बात आचार्य इन्द्रनंदी ने भी अपने नीतिसार में स्पष्ट रूप से कही है | यथा-

सगुणः निर्गुणः वापि, श्रावको मन्यते सदा ।
नावज्ञा क्रियते यस्मात्, तन्मूला धर्मवर्तना ।।

-आचार्य इंद्रनंदि, नीतिसार, 91

अर्थ- गुणवान हो या गुणहीन -सभी श्रावक हमेशा मान्य हैं और उनकी कभी भी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि धर्म की प्रवृत्ति सभी के मूलाधार से होती है।

पंडित आशाधरजी ने भी इसी प्रकार से नामधारी जैन तक को उत्कृष्ट पात्र कहा है | उनका वह श्लोक भी बहुत महत्त्वपूर्ण है | यथा-

नामतः स्थापनातोऽपि, जैनः पात्रायते तराम् ।
स लभ्यो द्रव्यतो धन्यैर्भावतस्तु महात्मभिः।।

-पंडित आशाधरसूरि, सागार धर्मामृत, 2/54

अर्थ- नाम जैन और स्थापना जैन भी उत्कृष्ट पात्र हैं । यदि द्रव्य से और भाव से जैन मिल जाऐं तो वे और भी श्रेष्ठ हैं, परन्तु हमें नामधारी जैन को भी अच्छे हृदय से स्वीकार करना चाहिए ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे आचार्यों ने एक साधारण से धर्मात्मा को भी विशेष स्नेह से अपनाया है | इतना ही नहीं, अंजन चोर, भील, चांडाल आदि अनेक महापापी जीव भी जिनधर्म के आश्रय से क्षण भर में धर्मात्मा बन गये, अत: हमें कभी किसी की अवज्ञा नहीं करना चाहिए | चोर, भील, चांडाल ही नहीं; सिंह, सर्प,

गज, गिद्ध, मेंढक आदि अनेक पशु-पक्षी भी जिनधर्म के आश्रय से प्रशंसनीय बन गये हैं | यही कारण है कि पंडित आशाधरजी ने जिनधर्म को सम्पूर्ण जगत का बन्धु कहा है | यथा-

जिनधर्मं जगद्बंधुमनुबद्धुमपत्यवत् ।
यतीञ्जनयितुं यस्येत्तथोत्कर्षयितुं गुणैः।।

- पंडित आशाधरसूरि, सागार धर्मामृत, 2/71

अर्थ- जैनधर्म सारे जगत का बंधु है और वह पुत्र की भाँति सभी की रक्षा करता है। जैनधर्म के आराधक यतियों को जन्म देने के लिए और उनके गुणों को बढ़ाने के लिए हमें अवश्य प्रयत्न करना चाहिए।

आश्चर्य है कि हम जिनवाणी के ऐसे-ऐसे वाक्य सुनकर भी अपने साधर्मी भाई की निन्दा, बुराई या अनादर करते हैं | अरे, साधर्मी तो छोड़िए, आचार्य सोमदेवसूरि ने तो अन्य धर्म वालों से भी मधुर सम्बन्ध बनाकर रखने का उपदेश दिया है | कहा है कि तभी आप अच्छी तरह अपने धर्म की प्रभावना कर पाओगे | यथा-

यथास्वं दानमानाद्यैः, सुखीकृत्य विधर्मणः।
सधर्मणः स्वसात्कृत्य, सिद्ध्यर्थी यजतां जिनम् ।।

-आचार्य सोमदेवसूरि, यशस्तिलकचम्पू, 8/32

अर्थ- अपने साधर्मी की तरह विधर्मी को भी दान-मान देकर सुखी करना चाहिए, जिससे जैनधर्म की प्रभावना का कार्य भलीभांति सिद्ध हो ।

आप कह सकते हैं कि अन्य धर्म वालों के साथ हम कैसे मिल-जुलकर रह सकते हैं ? दुनिया के वे सब लोग तो बहुत भ्रष्ट रहते हैं | तो भाई ! यहाँ उनकी गलत बातों का समर्थन करने के लिए नहीं कहा जा रहा है, अपितु मानवता के नाते अथवा सामाजिकता के नाते जितना जैसा सम्बन्ध रखना चाहिए, उतना ही रखने का उपदेश दिया जा रहा है | यही कारण है कि आचार्य सोमदेवसूरि ने इस बात को स्पष्ट करनेवाला भी एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण श्लोक लिखा है, जो गम्भीरता से विचारणीय है | यथा-

सर्व एव हि जैनानां, प्रमाणं लौकिको विधिः।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न, न चापि व्रतदूषणम् ।।

-आचार्य सोमदेवसूरि, यशस्तिलकचम्पू, 8/22

अर्थ- जैनों को सर्व लौकिक विधान स्वीकार हैं, परन्तु दो शर्तें हैं | एक तो हमारे सम्यग्दर्शन की हानि नहीं होनी चाहिए और दूसरा हमारे व्रतों में भी दोष नहीं लगना चाहिए ।

अन्य धर्म वालों के साथ समन्वय बिठाने के लिए हमारे पूर्वाचार्यों ने भी अनेक प्रयोग उदारतापूर्वक किये हैं | यथा- अपने भगवान को ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि कहना; चार अनुयोगों को चार वेद कहना आदि | मुझे तो भक्तामर और णमोकार भी वास्तव में इसीलिए महान प्रतीत होते हैं, क्योंकि वे सबको जोड़ते हैं |

जो भी हो, हमें अपनी समाज के साथ तो बहुत ही मिल-जुलकर रहना चाहिए, समाज की उन्नति के लिए ही नहीं, उसकी रक्षा-सुरक्षा तक के लिए भी यह अत्यन्त आवश्यक है | तथा दूसरे धर्म-सम्प्रदाय के साथ भी इतना तो रख ही सकते हैं कि उनकी बुराई या निन्दा न करें, क्योंकि इससे भी हमारे धर्म की महान हानि हो सकती है | पंडित टेकचंदजी ने अपने ग्रन्थ 'सुदृष्टितरंगिणी' में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण गाथा लिखी है | यथा-

धम्मसभा णिप पंच य लोगा य बंधुवग्गाणि।
इण विरुधं वच करदि स च सठ लोगणिंद दुखलहो ।।

-पं. टेकचन्दजी, सुदृष्टितरंगिणी 100

अर्थ- धर्मसभा, राजा, पंच, समाज के प्रतिष्ठित लोग और बन्धुवर्ग इनके विरुद्ध बोलने वाला व्यक्ति शठ है, लोकनिन्द्य है और दुःख का पात्र है ।

अत: हमें दूसरे धर्म, समाज, सम्प्रदाय, सामाजिक-राजनीतिक संस्था आदि की कभी भी निन्दा नहीं करना चाहिए | तथा अपने धर्म, समाज आदि के साथ तो बहुत अधिक ही प्रेम, सहयोग एवं आदर की भावना के साथ संगठित रहना चाहिए, एकदम बिल्कुल अपने परिवार की ही तरह, जैसा कि आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने कहा है-

स्वयूथ्यान् प्रति सद्भावसनाथापेतकैतवा |
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ||

-आचार्य समन्तभद्र, रत्नकरंड श्रावकाचार, 17

अर्थ- अपने सधर्मियों का सद्भावना के साथ एकदम कपट-रहित होकर आदर-सत्कार करना वात्सल्य है, जो सम्यग्दृष्टि का अंग (चिह्न) है |

अपने साधर्मी से विसंवाद करने को तत्त्वार्थसूत्र (7/6) में भी अतिचार कहा है- सद्धर्माविसंवाद | इन सबसे सिद्ध होता है कि जैन समाज में एकता और सौहार्द की बात केवल सामाजिक मुद्दा नहीं है, अपितु धार्मिक विषय भी है, क्योंकि शास्त्रों के अनुसार जिसे अपने सधर्मी के प्रति वात्सल्य नहीं उमड़ता, वह सच्चा धर्मात्मा नहीं है |

कुछ लोग कहते हैं कि वे तो निश्चयवाले हैं या व्यवहारवाले हैं, अथवा वे तो तेरापंथी हैं या बीसपंथी हैं, अथवा वे तो ज्ञानवाले हैं या क्रियावाले हैं, इत्यादि, अत: हम उनके साथ कैसे निभा सकते हैं ? तो इसके सम्बन्ध में भी जैनाचार्यों ने बहुत महत्त्वपूर्ण श्लोक लिखे हैं, हमें उन पर गम्भीरता से ध्यान देना चाहिए | यथा-

जइ जिणमयं पवज्जह, तो मा ववहारणिच्छह मुयह।
एक्केण विणा छिज्जइ, तित्थं अण्णेण पुण तच्चं ।।

-आचार्य अमृतचन्द्र, समयसारटीका, गाथा 12

अर्थ- यदि जिनमत का प्रवर्तन करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय -इन दोनों ही नयों को मत छोड़ो, क्योंकि एक के बिना तीर्थ का नाश हो जाएगा और दूसरे के बिना तत्त्व का ।

ज्ञान और क्रिया के पक्षपातियों को भी निम्नलिखित श्लोक पर ध्यान देना चाहिए-

ज्ञानं पूज्यं तपोहीनं, ज्ञानहीनं तपोर्हितम् ।
यत्र द्वयं स देवः स्याद्, द्विहीनो गणपूरणः।।

-सोमदेवसूरि, यशस्तिलकचम्पू, 8/15

अर्थ- तप कम हो और ज्ञान अधिक हो, तो वह भी पूज्य है और ज्ञान कम हो, तप अधिक हो तो वह भी पूज्य है। यदि ज्ञान और तप दोनों ही हों तो वह तो परमपूज्य है। किन्तु जो ज्ञान और तप दोनों से ही रहित है वह तो केवल संख्या पूरित करने वाला है।

यदि इसके बाद भी हम नहीं समझे और परस्पर लड़ते रहे तो आचार्य कहते हैं कि ऐसा करके तुम दोनों ही नष्ट हो जाओगे | इस आशय का भी एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण श्लोक है, जिस पर गम्भीरता से चिन्तन करना चाहिए | यह श्लोक पंचतन्त्र में भी मिलता है और मुनि नागसेन कृत मदनपराजय में भी मिलता है | यथा-

एकोदरा पृथक्ग्रीवा अन्योन्यफलभक्षिणः।
असहन्ता तं विनश्यन्ति भारुण्डा इव पक्षिणः।। - मदनपराजय,

अर्थ- जिनका उदर एक है, परन्तु ग्रीवा (मुख) भिन्न-भिन्न होने से एक-दूसरे के फल का भक्षण करते हैं, वे यदि एक-दूसरे को सहन नहीं करेंगे तो भारुण्ड पक्षी के समान दोनों ही नष्ट हो जाएँगे।

इस श्लोक में भारुण्ड पक्षी का एक बहुत ही मार्मिक दृष्टान्त दिया गया है, जिसकी प्रजाति वर्तमान में लुप्त हो चुकी है | वह भारुण्ड पक्षी अत्यन्त विशालकाय होता था और उसके दो मुख होते थे | वह दोनों मुखों से एक साथ भोजन किया करता था | एक दिन उसके उन दोनों मुखों में इस बात पर झगड़ा हो गया कि तू अधिक भोजन कर रहा है और इसलिए एक मुख ने दूसरे मुख को विष खिला दिया | परिणाम यह हुआ कि दोनों ही मर गये | इसी प्रकार निश्चय-व्यवहार आदि के नाम पर लड़ने वालों को कान खोलकर सुन लेना चाहिए कि परस्पर लड़ने से किसी एक ही नाश नहीं होगा, अपितु दोनों का ही नाश हो जाएगा |

इसलिए हमें चाहिए कि हम सब मिल-जुलकर रहें | हमसे जितना अपनी शक्ति-अनुसार धर्म पले, उतना पालें, परन्तु किसी की निंदा-आलोचना न करें, अपनी श्रद्धा ठीक रखें | इस सम्बन्ध में आचार्य कुन्दकुन्द की यह गाथा भी बहुत ध्यान देने योग्य है-

जं सक्कदि तं किज्जदि, जं च ण सक्कदि तहेव सद्दहणं ।
सद्दहमाणो जीवो, पावदि अजरामरं ठाणं ।।

-आचार्य कुन्दकुन्द, दंसणपाहुड, गाथा 22

अर्थ- जो शक्य हो वह करो और जो तुमसे शक्य नहीं हो उसकी भी श्रद्धा तो अवश्य करो, क्योंकि श्रद्धा करनेवाला जीव एक दिन अवश्य ही अजर-अमर पद को प्राप्त करता है ।

इस प्रकार हमें अनेक तरह से सामाजिक एकता के महत्त्व को स्वयं भी भलीभांति समझना चाहिए और अपनी समाज के हर सदस्य को भी अच्छी तरह समझाना चाहिए | इससे अवश्य ही एकता और सौहार्द का सुन्दर वातावरण बनेगा |

सामाजिक एकता के सम्बन्ध में आचार्य विद्यानन्दजी का चिन्तन बहुत अधिक था और उन्होंने उसके आधार पर हमारी समाज में भी एकता का वातावरण बनाने में भी अद्‌भुत योगदान किया है | मुझे उनके पावन सान्निध्य में 24 वर्ष तक रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है | मैं स्वीकार करता हूँ कि यहाँ मैंने जो विचार व्यक्त किये हैं, उनमें उनका बहुत अधिक उपकार है | एकता और सौहार्द की भावना बढ़ाने के लिए उन्होंने अनेक सूत्र-वाक्य (नारे) भी समाज को प्रदान किये थे | यथा-

1. मत ठुकराओ गले लगाओ, धर्म सिखाओ |
2. मतभेद हो, पर मनभेद नहीं |
3. कैंची का नहीं, सूई-धागे का काम करो |

आचार्यश्री की विशाल दृष्टि देखिए कि वे तीसरे सूत्र-वाक्य को सुनाते तो थे, पर समाज के कर्णधार नेताओं से कहते थे कि सुनो, तुम्हें तो दोनों को ही सम्भालना है, क्योंकि कटेगा नहीं तो सिलेगा क्या ? दर्जी पर कैंची और सूई-धागा दोनों ही होना चाहिए | इसलिए आपको किसी का भी बहिष्कार नहीं करना है, सभी को जोड़कर चलना है | काश, ऐसी भावना सबकी हो जाए | यह वर्ष आचार्यश्री की जन्म-शताब्दी का वर्ष भी है, अत: यदि इस अवसर का उपयोग इस कार्य में किया जा सके तो अवश्य करना चाहिए | इससे उत्तम कार्य अन्य क्या होगा ?